REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 7 | ISSUE - 10 | JULY - 2018

व्यक्तिवादी उपन्यासकार जैनेंद्र कुमार

प्रा. डॉ. गजानन पोलेनवार
हिंदी विभाग प्रमुख , तायवाडे महाविद्यालय, महादुला कोराडी,नागपुर.

प्रस्तावना

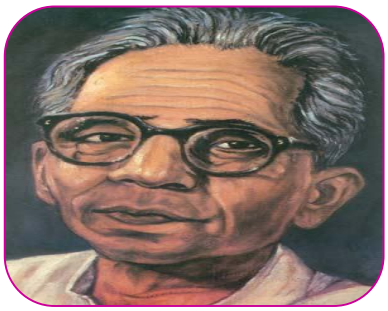

आधुनिक हिंदी कथासाहित्य में प्रेमचंदोत्तर युग के कथाकारों में उपन्यासकारजैनेंद्र का नाम बहुचर्चित रहा है। कथाकार, उपन्यासकार, निबंधकार, आलोचक एवं पत्रकार के रूप में जैनेंद्र का व्यक्तित्व बहुआयामी था। जैनेंद्र ने ग्यारह उपन्यासों की रचना की हैं, और इन उपन्यासों के आधारपर उनके व्यक्तिवादी दृष्टिकोण का विवेचन, विश्लेषण एवं मूल्यांकन प्रस्तुत शोध आलेख के केंद्र में हैं।

जैनेंद्र के उपन्यासों पर विचार करने के पहलेउपन्यासकार की जीवनसंबंधी परिस्थितीयों पर भी प्रकाश डालना अनुचित नहीं होगा क्यांकि लेखक के व्यक्तित्व का प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव उसकी रचनाओं पर अवश्य पड़ेगा । जैनेंद्र की ही शब्दों में — ''साहित्य साहित्यिक की आत्मा को व्यक्त करता है, साहित्य और साहित्यिक इन दोनों में वैसा पार्थक्य नहीं है, जैसा कि हलवाई और मिठाई में होता है । रचनाकार और रचनाकृति में ऐसा घनिष्ठ संबंध है, इसलिए आप यह निरपवाद मान लीजिए कच्चा साहित्य का कर्ता कच्चा ही होता है।''[१]जैनेंद्रके इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि उनके जीवन एवं तत्कालीन परिस्थितियों का गहरा प्रभाव उनकी कृतियों पर पड़ा है ।

जैनेंद्रकापालन पोषण एवं शिक्षा—दीक्षा मॉ रामदेवी बाई एवं मामा भगवानदीन की देखरेख में हुई । मामा भगवानदीन गांधीवादी विचारधारा वं अध्यात्मोन्मुख प्रवृत्ति में तन—मन से रंगे हुए थे और जैनेंद्र की मॉ अत्यंत विदुषी एवं साहसी थी । रामदेवीबाई महिलाश्रम की संचालिका होने के साथ ही साथ राजनीति में भी सक्रिय भाग लेती थी । इन दोनों का गहरा प्रभाव जैनेंद्र पर पड़ा है । इनकी प्रारंभिक शिक्षा अपने मामा भगवानदीन के द्वारा ही स्थापित हस्तिनापूर के गुरुकुल में हुई । गुरुकुल की शिक्षा के उपरांत इन्होंने पंजाब से मेट्रिक की परीक्ष पास की । उच्च शिक्षा के लिए वे बनारस भेजे गए । वहॉ दो वर्ष पढ़ने के बाद सन १९२१ में लाला लजपतराय के ''तिलक स्कूल ऑफ पोलिटिक्स'' में भर्ती हुए, लेकिन वहॉ मन न रमने के कारण ये अधिक दिन वहॉ नहीं रहे । अपनी मॉ एवं मामा की अनुमति लेकर वे सक्रिय राजनीति में भाग लेने लगे । इन्ही दिनों माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान जैसे साहित्यकारों से इनका परिचय हुआ ।

घरेलु खर्च के लिए कोई निश्चित आय न होने के कारण मॉ ने इनके लिए एक साझीदार के साथ मिलकर फर्नीचर की दुकान खुलवा दी । लेकिन नेक प्रकृति के जैनेंद्र को धोखेबाज साझीदार से बन नहीं पड़ा और वे व्यापार छोड़ने को विवश हुए । सन १९२३ में नागपुर में झेंडा सत्याग्रह में भाग लेने के कारण इन्हें तीन महीनों का कारावास मिला। ''नमक बनाओ'' आंदोलन में भाग लेकर १९३६ में पंद्रह दिन और १९३२ में सत्याग्रह आंदोलन में भाग लेकर आठ महीने ये जेल में रहे । सन १९३२ के बाद उन्होने सक्रिय राजनीति में भाग लेना छोड़ दिया । नौकरी की खोज में वे कलकत्ता गए । लेकिन मॉ से दूर रहकर दुखी हो गए और घर लौट आए । 'महारथी'' पत्रिका के संपादक श्री रामंचद्र शर्मा के दप्तर में इन्हें सत्तर रुपये की नौकरी मिल गई । लेकिन इन्ही दिनों गांधीजी का ''दान भाव से काम करने'' का आह्वान पाकर इन्होंने नौकरी छोड़ दी ही नहीं, धन और कमाई को लेकर उनके मन में इतना घोर संघर्ष

हुआ कि उन्होंने फिर कभी नौकरी न करने की दृढ़ प्रतिज्ञा भी की । गुरुकुल के दिनों से ही अंतरमुखी प्रवृत्ति के, लेकिन अतिभावुक जैनेंद्र अब पुस्तकों की शरण में आए। सन १९२९ में इनका विवाह हुआ । यह विवाह भी उनकी विद्रोही प्रवृत्ति का परिचायक था । विवाह के अवसर पर सारा गॉव उपस्थित था, और गॉववालों के लिए यह विवाह एक आश्चर्य था । न अग्निसाक्षित्व था, न मंत्रोच्चारण । वधु ने वर को वरमाला पहनाई, वर ने वधु को जयमाला । हो गया ब्याह । अपने वैयक्तिक जीवन की यह अंतर्मुखता एवं विद्रोहात्मक प्रवृत्ति उनके उपन्यासों के पात्रों में भी दिखाई पड़ती है ।

लेखन—कार्य इनके लिए एक प्रकार से जीवन से पलायन था । पारिवारिक दायित्वों के साथ आर्थिक अभाव भी बढ़ा तो इन्हें एक प्रकार के हीनताबोध एवं आत्मग्लानि का अनुभव हुआ, जिनसे मुक्त होने के लिए ही इन्होने कलम उठाई । जैनेंद्र के ही शब्दों में — ''अपने भीतर आत्मग्लानि, हीन भावनाओं और उनमें सिमटी हुई स्वप्नाकांक्षाओं को कागज पर निकालकर जैसे मैंने स्वास्थ्य का लाभ प्राप्त किया ।''[२]इस प्रकार हम देख सकते हैं कि जैनेंद्र का समस्त साहित्य उनकी अपनी आत्मा के अन्वेषण का प्रयास है । प्रो.लक्ष्मणदत्त गौतम के शब्दों में — ''उनका व्यक्तित्व सरल नहीं है, जटिल है और जटिलता के कारणों की खोज भी हमें जैनेंद्र को पहचानने में सहायता दे सकती है । जैनेंद्र के व्यक्तित्व में अहंकार और उत्सर्ग की विरोधी प्रवृत्तियों का अद्‌भुत समन्वय मिलता है ।''[३] नियति पर जैनेंद्र अटल विश्वास रखते हैं। समाज के बंधनों को उन्होंने स्वीकार नहीं किया। जीवन के स्थूल पक्ष की अपेक्षा अध्यात्म पक्ष की ओर उनकी विशेष रुचि थी। उनके अनुसार नियति नामक तत्व मनुष्य को जड़ बनाता नहीं, बल्कि हमारी अल्पज्ञता एवं निसारता का हमें बोध दिलाता है ।

प्रेमचंद्र के साथ जैनेंद्रका निकट संपर्क रहा है । ''हंस'' की स्थापना में वे प्रेमचंद के साथ रहे । छह महीने तक इन्होंने 'हंस' का संपादन भी किया था । लेकिन जैनेंद्र के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि अपने युग के अन्य कथाकारों की तरह प्रेमचंद की परंपरा को अपनाए बिना, उन्होंने अपनी व्यक्तिवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति कर, हिंदी में व्यक्तिवादी उपन्यासों के लिए पृष्ठभूमि तैयार की । इस समय तक साहित्य, राजनीति तथा समाज पर एक और मार्क्स, युंग और फ्रायड का तथा दूसरी और गांधीजी का सत्य, अहिंसा, और प्रेम का प्रभाव पड़ चुका था । इन देशी एवं विदेशी प्रभावों से दूर रहना किसी भी सजग साहित्यकार के लिए संभव नहीं था । इन परिस्थितियों में रहकर जैनेंद्र ने व्यक्तिवादी दर्शन को अपनाया । उन्हीं के शब्दों मे — ''मैं व्यक्ति को ब्रह्मांड का केंन्द्र मान सकता हूं । कारण व्यक्ति चित्त खंड है । केन्द्र को चित्त में मान लेने से सारा ब्रह्मांडसजीव और चिन्मय हो उठता है ।''[४] व्यक्ति को ब्रह्मांडका केंन्द्र मानने से जैनेंद्र की व्यक्तिवादिता निस्संदेह प्रमाणित होती है । उनके मत में ''व्यक्ति का समूचा प्रतिनिधित्व समाज में होना चाहिए।''[५]आचार्य नंददुलारे वाजपेयी जी के शब्दों में ''जैनेंद्रकुमार की व्यक्तिवादिता एक दर्शनिक आवरण ले कर आती है ।''[६] यह दार्शनिक आवरण ही उनकोअन्य उपन्यासकारों से भिन्न बनाता है ।

रचनाक्रम की दृष्टि से जैनेंद्र के उपन्यास निम्नलिखित हैं — परख (१९२९), सुनीता (१९३२), त्यागपत्र (१९३७), कल्याणी (१९३९), सुखदा (१९५२), विवर्त (१९५३), व्यतीत (१९५३), जयवर्धन (१९५६), मुक्तिबोध (१९६५), अनंतर — (१९६८), अनामस्वामी (१९७३) ।

'परख' की कथावस्तु मास्टर सत्यधन के आदर्शवाद और शिष्या बालविधवा कट्टो के प्रति उसकी अनुरक्ति का संघर्ष प्रस्तुत करती है । लेकिन परख में लेखक यह साबित करते हैं कि जीवन की सिद्धि प्रेम नहीं, स्वयं जीवन है । इस उपन्यास का ऐतिहासिक महत्व है कि इसी के द्वारा हिंदी में व्यक्तिवादी उपन्यासों की परपंरा का श्रीगणेश हुआ । डॉ.बलराजसिंह राणा के शब्दों में — ''प्रेमचंद द्वारा प्रवर्तित सामाजिक उपन्यास परंपरा से अलग हटकर उपन्यास साहित्य को नया मोड़ देने का श्रेय इसी कृति को जाता है ।''[७]

''सुनीता'' की सुनीता के एक और पति श्रीकांत है ओर दूसरी और उसका प्रेमी क्रांतिकारी हरिप्रसन्न । श्रीकांत सुनीता जैसी पत्नी को पाकर अत्यंत संतुष्ट है । क्रांतिकारी हरिप्रसन्न व्यक्ति के सुख की अपेक्षा राष्ट्र के सुख को महत्व देता है । लेकिन सुनीता अपने लिए अप्राप्य राष्ट्र की अपेक्षा, प्राप्य व्यक्ति का ही महत्व मानती है । उसके ही शब्दों में — ''कहते हो कि राष्ट्र विराट है, व्यक्ति छोटा है ।

ठीक, किंतु राष्ट्र मुझे अप्राप्य है, मेरे निकट तो व्यक्ति ही है।''[८] हरिप्रसन्न चाहता है कि सुनीता पारिवारिक सुख के इस भ्रमजाल को तोड़कर, राष्ट्र के लए शीश चढ़ानेवाले नवयुवकों की प्रेरक शक्ति बने । लेकिन सुनीता अनायास यह समझ लेती है कि राष्ट्र को समर्पित यह व्यक्ति भी प्रेम की दुर्बलता से पीड़ित है । उसे इस दुर्बलता से बचाने के लिए सुनीता विवस्त्र होकर उसके सामने खड़ी हो गई तो इस अकस्मात समर्पण को स्वीकार करने की शक्ति उसमें नहीं रही । उस रुप में हरिप्रसन्न को उसका चंडी रुप ही दिखाई पड़ा । क्रांतिकारी युवकों के लिए प्रेरक शक्ति बनने की प्रार्थना वह सुनीता से करता रहा, लेकिन स्वंय हरिप्रसन्न के लिए ही वह प्रेरणास्त्रोत बन गई ।

''त्यागपत्र'' एक अभागिनी नारी मृणाल की कथा है, जिसने कर्तव्य की बलिवेदी पर अपने प्रेम की कुर्बानी की, पातिव्रत्य की रक्षा हेतु बड़ी ईमानदारी से उसने अपने पति से अपने प्रेम—स्वप्नों की कथा कही, जिसका परिणाम यही हुआ कि वह पति द्वारा परित्यक्ता हुई । लेकिन पति से परित्यक्त होने पर भी वह धर्म छोड़ती नहीं । वह कहती है — ''मैं मर सकती थी, लेकिन मरी नहीं, मरने को अधर्म जानकर ही मै मरने से बच गई ।''[९] पत्नी के रुप में मान्यता मिलने के लिए मृणाल ने प्रेमी को छोड़ा, पतिव्रत्य धम्र के पालन के भ्रम में पड़कर पति का आश्रय खोया, पति से तिरस्कृत होने पर अपने प्रेमी के जीवन को कलंकित न करे, इस विचार से वह एक कोयलेवाले के आश्रय में, अपने तन का सौदा किए बिना रहती है । आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने यह प्रश्न उठाया है कि ''मृणाल ने कोयलेवाले की आश्रित के रुप में जीवन यापन करना क्यों स्वीकार किया ? क्या अधिक सम्मानपूर्ण उपायों का अवलंबन वह नहीं कर सकती थी ?''[१०] जो कुछ भी हो सामाजिक न्याय की वेदी पर न्यायाधीश प्रमोद ने यह सब देखा, और न्याय की धर्मतुला के साथ अपनी आत्मा का समझोता न हो सकने के कारण उसने न्यायाधीश के पद से ''त्यागपत्र'' दिया । भारत की एवं विदेश की चौदह् भाषाओं में ''त्यागपत्र'' का अनुवाद हो चुका है ।

''कल्याणी'' में प्रेम की घुटन एवं अतृत्पि की कथा है । कल्याणी डाक्टरी करती है । पति असरानी की दृष्टि में वह धन कमाने का एक साधन मात्र है । समाज में उसकी बदनामी का भय दिखाकर डॉक्टर असरानी ने उसे अपने साथ ब्याह करने को विवश किया था । असरानी के जाल में फंस जाने पर वह मूक पशु की भॉति या मध्ययुगीन भारतीय नारी की तरह उसके सभी अत्याचारों को सहन करती है । अंत में गर्भिणी कल्याणी आत्महत्या में ही अभय पाती है ।

''सुखदा'' उपन्यास की सुखदा धनी माता—पिता की इकलोती बेटी है । लेकिन महत्वाकांक्षी सुखदा डेढ़ सौ रुपये मासिक कमानेवाले पति के साथ संतुष्ट नहीं है । आर्थिक कठिनाईयों को झेलते वक्त उसे अपने पति पर क्रोध आता है । एक दिन गंगासिंह नामक एक क्रांतिकारी युवक प्रच्छन्न वेष में उनके यहॉ नौकरी करने आता है । अचानक वह गिरफ्तार हो जाता है तो सुखदा को मालुम हुआ कि इस गिरफ्तारी के पीछे उसके पति कांत का ही हाथ है । इससे सुखदा के विचारों में परिवर्तन हो जाता है और वह सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करती है । इन्हीं दिनों वह हरीश से प्रेरणा लेती है और लाल उसकी और आकर्षीत होता है । अपने पुत्र को नैनीताल में पढ़ाने के लिए वह अपने गहने बेच देती है । लाल उसके गहने खरीदकर उसे लौटा देता है । गांधीवाद का प्रभाव बढ़ जाने पर हरीश की पार्टी छिन्न भिन्न हो जाती है और हरीश को गिरफ्तार करवाकर इनाम में पाए पॉच हजार रुपए कांत सुखदा को देता है । कांत के प्रति सुखदा के मन में इतनी घृणा हो जाती है कि वह घर छोड़कर मायके चली जाती है । मानसिक तनाव एवं आत्मपीड़न से, क्षयरोग से ग्रस्त होकर सानटोरियम में रहनेवाली सुखदा की आत्मकथा के रुप में यह उपन्यास लिखा गया है । अपने इस रोग को वह प्रायश्चित के रुप में स्वीकार करती है और अपनी इस दुर्दशा का कारण वह अपने आप को ही मानती है । सुखदा के ही शब्दों में — ''कभी मेरी सोने की गृहस्थी थी, अब ठौर का भी ठिकाना नहींहै । सब उजड चुका है, और अपने ही हाथों से मैंने उजाड़ा है ।''[११] सुखदा की मूल समस्या को उसका ''अहं'' मानते हुए डॉ. नगेंद्र ने लिखा है — ''जीवन की सबसे बड़ी समस्या है अहं और सबसे सफल समाधान है उसका उत्सर्ग । इस उत्सर्ग की विधि है आत्म—पीड़न । सुखदा के जीवन की भी मूल समस्या उसका यही अहंकार है, जिसके उत्सर्ग के

लिए वह अपने को हठात् पीड़ा की अग्नि में डाल देती है ।''[१२] अपने परिवार के विघटन का कारण सुखदा अपने आप को मानती है और अपने पापों के प्रायश्चित के रुप में वह आत्मपीड़न भोगती है ।

''विवर्त'' उपन्यास की भुवनमोहिनी रिटायर्ड जज की पुत्री है। वह एक अंग्रेजी पत्र के संपादकीय विभाग में काम करने वाले जितेन से प्रेम करती है । लेकिन शादी के प्रस्ताव को जितेन स्वीकार नहीं करता है । भुवनमोहिनी का ब्याह मजिस्ट्रेट नरेशचंद्र से हो जाता है । जितेन क्रांतिकारी बन जाता है और एक दिन रेल उड़ाकर भुवनमोहिनी के यहाँ शरण लेता है । यह बीमार हो जाता है, तो मोहिनी उसकी सेवा करती है । जितेन पहले मोहिनी के गहने चुरा लेजाता है और फिर भुवनमोहिनी को ही उड़ा ले जाकर बदले में पार्टी के लिए पैसा माँगता है । जितेन के विचारों में परिवर्तन होता है और वह पुलिस के समाने आत्मसमर्पण करता है । यह एक लघु उपन्यास है । नरेश की अपनी पत्नी को इतरी स्वतंत्रता देना व्यक्तिवादी दृष्टिकोण की ही अभिव्यक्ति है । मोहिनी के मूँह से — ''हम जो हैं, हर एक को खुद होने की स्वतंत्रता है ।''[१३] कहलवाकर उपन्यासकार ने अपने ही विचारों का परिचय दिया है ।

''व्यतीत'' उपन्यास में जयंत अपने असफल प्रेम की कहानी आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत करता है । उसे सिविल सर्व्हिस की कामना थी, लेकिन उसे एक अंग्रेजी पत्र का सह — संपादक ही बनना पड़ा । सपंन्न परिवार की अनिता उसे प्यार करती है लेकिन उसने उसे स्वीकार नहीं किया । उसका ब्याह चंद्री से हो गया । चंद्री को छोड़कर वह सेना में कैप्टन बन जाता है । अनिता ने अपने को जयंत के सम्मुख समर्पित किया, लेकिन यह अनिता को छोड़कर गेरुए कपड़े स्वीकार करता है। जयंत और अनिता दोनों उपन्यासकार की व्यक्तिवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति करनेवाले पात्र हैं। जयंत का यह कथन कि ''आदमी अकेला आता, अकेला जाता है, बाकी बीच का झमेला ही तो है।''[१४] जैनेंद्र के ही दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति है ।

डायरी शैली में लिखे गए उपन्यास ''जयवर्धन'' का नायक जयवर्धन इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारंभ के काल्पनिक अधिपति है । भारत का अधिपति जयवर्धन अपने आचार्य की पुत्री इला के साथ रहता है । इन दोनों ने ब्याह नहीं किया है । इसलिए नेता लोगों के मन में जयवर्धन के प्रति रोष है । अमरीकी पत्रकार हुस्टन, जिसकी डायरी के पृष्ठों के माध्यम से जयवर्धन को अंकित किया है, जयवर्धन और इला के अतिथि बनकर रहते हैं । यह अपने कार्यकाल में आचार्य स्वामी चिदानंद, नाथ दंपति और इंद्रमोहन से मिलकर जयवर्धन के व्यक्तित्व को पढ़ने का प्रयत्न करता रहा । जयवर्धन का अंतरंग लेने आया तो वह कहता है ''अंतरंग लेने के लिए नहीं, न देने के लिए है । तभी भगवान ने उस अंदर ढक रखा है ।''[१५] आचार्य जेल विमुक्त होकर आता है तो जयवर्धन के विरुध्द षडयंत्र रचा जाता है । राष्ट्रीय परिषद के सम्मुख जयवर्धन अपने उत्तरदायित्वों से मुक्त हो जाता है ।

पचास वर्ष आगे आने वाली बातों की कल्पना कर यह उपन्यास किया गया है । जटिल विचारों से यह उपन्यास बोझिल हो गया है । उपन्यास के अंत में जयवर्धन उत्तर—दायित्वों के बंधनों से मुक्त हो जाता है फिर भी वह यह मानता है कि ''इला स्वतंत्र नहीं है, मै स्वतंत्र नहीं हूँ, कोई स्वतंत्र नहीं है, सब मुक्त है और अंत में परस्पर एक नियति की डोर में बंधे हैं ।''[१६] जयवर्धन लेखक की नियतिवादी विचारधारा का परिचय देता है ।

''मुक्तिबोध'' उपन्यास में जैनेंद्रकुमार ने संसद के सदस्य सहाय के मन के भीतर उठनेवाले अंतरद्वन्द्व की कथा कही है । सहाय के मिनिस्ट्री से इनकार करने की बात को लेकर उसके निकटतम व्यक्तियों के मन में जो प्रतिक्रियाएँ हुई, उनको इस उपन्यास में व्यक्त किया गया है । अपने निकटतम संबंधियों के जोर देने पर अंत में वे मिनिस्टर बन जाते हैं । सहाय, उनकी पत्नी, सहाय की प्रेमिका नीलिमा, राजश्री, पुत्री अंजली, अंजली का पति, सहाय का पुत्र वीरेंद्र आदि इस लघु उपन्यास के पात्र हैं । सभी व्यक्ति अपने स्वार्थ के घेरे में बंधे हुए हैं और वे सहाय को अपनी स्वार्थपूर्ति का साधन एवं माध्यम मानते हैं ।

इस प्रकार हम देख सकते है कि जैनेंद्र के उपन्यासों के पात्र असाधरण व्यक्ति हैं । व्यक्ति तथा उसके व्यक्तित्व के बीच का संघर्ष ही जैनेंद्र के उपन्यासों का आधार है । उनके उपन्यासों में सामाजिक समस्याएँ भी व्यक्ति की समस्या बनकर आती है । 'त्यागपत्र' 'कल्याणी' और 'सुखदा' की भूमिकाओं में

जैनेंद्र ने लिखा है कि इनकी कथाएँ सच्ची घटनाओं पर आधारित है । लेकिन इस बात में संदेह नहीं है कि ये उपन्यास भी उनके अन्य उपन्यासों की तरह काल्पनिक है । ''सुनीता'' के प्रकाशन के समय, यौन–क्षेत्र में जैनेंद्र ने नारी को जो स्वतंत्रता दी है, है, उसपर उन्हे कटु आलोचनाएँ सुननी पड़ी थी और आलोचकों के मत में अपनी रक्षा के लिए ही जैनेंद्र ने पाठकों को यह भुलावा दिया है । जो कुछ भी हो जैनेंद्र क दृष्टि में व्यक्ति ही सब कुछ है और व्यक्ति की निर्बाध गति में उन्होंने कभी समाज के द्वारा अवरोध उत्पन्न नहीं होने दिया ।

विश्व भर के उपन्यासों में, पात्रों में प्रतिद्वन्द्विता चलाकर कथा को रोचक बनाने की प्रणाली प्रचलित है । इसके लिए लेखकों ने प्रेम के क्षेत्र में एक पुरुष और दो स्त्रियां या दो पुरुष और एक स्त्री को लेकर ही प्रतिद्वन्द्विता की भावना सामने रखा है । भारतीय कथा साहित्य में भी बंकिम बाबू के ''विषवृक्ष'' के बाद इस प्रणाली का प्रचलन हुआ है । जैनेंद्र के सभी उपन्यासों में यह द्वन्द्व दिखाई पड़ता है । अंतर इतना ही है कि यहाँ व्यक्ति का अपने व्यक्तित्व से ही संघर्ष अधिक है । अपने सभी उपन्यासों में जैनेद्र ने नारी के प्रेम एवं विवाह की समस्याओं को प्रस्तुत किया है । विवाहित अवस्था में भी जैनेंद्र की नारी अपने पूर्व प्रेमी या और किसी से प्रेम करने को स्वतंत्र है । ''सुनीता, सुखदा और विवर्त, की नारी दांपत्य मर्यादाओं को तोड़कर प्रेम करती तो है लेकिन पति को उदारता के कारण ही यह संभव हो सकता है ।''[१७] लेकिन ''मुक्ताबोध'' का सहाय और ''अनाम स्वामी'' का कुमार अपनी पत्नियों को पर पुरुषों से प्रेम करने की प्रेरणा देते हैं । इसके विपरीत कल्याणी का पति और 'त्याग पत्र' की मृणाल का पति अपनी पत्नियों पर व्यर्थ आरोप लगाते हैं । 'जयवर्धन' का नायक जयवर्धन और इला विवाह बंधन में बंधे बिना एक साथ रहते हैं । 'त्यागपत्र' की मृणाल, और 'कल्याणी' की कल्याणी को छोड़कर उनकी सभी नारियाँ इतनी स्वतंत्र एवं स्वच्छंद मनोवृत्ति की है कि पति या अपनी संतान तक को वे अपने प्रेम में बाधक बनने नहीं देती या दूसरे शब्दों में कहें तो उनकी भी वे परवाह नहीं करती । डॉ. शांतिभूषण भारद्वाज के शब्दों में ''जैनेद्र सामाजिक आदर्श के प्रति उतने सजग नहीं रहे, जितने वैयक्तिक यथार्थ के प्रति ।''[१८]

जैनेंद्र के अधिकांश पुरुष पात्र असफल प्रेमी हैं । अपनी प्रेमकुंठा के कारण वे क्रांतिकारी या विद्रोही बन जाते हैं । किसी का मानसिक परिवर्तन होता है, लेकिन शंकर उपाध्याय जैसा व्यक्ति मरते दम तक बदलता नहीं है । जैनेंद्र के संबंध में आचार्य वाजपेयी जी का यह कथन इस प्रसंग में अत्यंत समीचीन लगता है —''रचना के क्षेत्र में वे न तो गांधीवादी है, और आदर्शवादी । वे एकांतिक, भावुक और कल्पनाजीवी लेखक हैं जो —वास्तविकता के प्रकाश में धूमिल दिखाई देते हैं ।''[१९]

१) साहित्य का श्रेय और प्रेय— जैनेंद्रकुमार, पृ. ३१७
२) साहित्य का श्रेय और प्रेय, पृ. १८—१९
३) जैनेंद्र और उनका त्यागपत्र — पृ. १७
४) समय और हम— जैनेंद्रकुमार, पृ. ९३
५) साहित्य का श्रेय और प्रेय— पृ. २५
६) नया साहित्य, नए प्रश्न — नंददुलारे वाजपेयी, पृ. १८६
७) उपन्यासकार जैनेंद्र के पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, पृ. ५१
८) सुनीता, पृ. १४९
९) त्यागपत्र—पृ. ५९
१०) हिंदी साहित्य — नंददुलारे वाजपेयी, पृ. १७१
११) सुखदा — जैनेंद्रकुमार, पृ. ३
१२) आस्था के चरण (सुखदा), डॉ. नगेंन्द्र, पृ. ६२२
१३) विवर्त—जैनेंन्द्रकुमार, पृ. १८
१४) व्यतीत, पृ. १२७
१५) जयवर्धन, पृ. २३

१६) जयवर्धन, पृ. २००
१७) जैनेंद्र—साहित्य और समीक्षा—डॉ. रामरतन भटनागर, पृ. ९००
१८) हिंदी उपन्यास—प्रेम और जीवन, पृ. १४४
१९) जैनेंद्रकुमार—व्यक्ति, कथाकार और चिंतक, पृ. २६